

डॉ.शेकर शेष के नाटको में सामाजिक चेतना

प्रा. डॉ. विजया गाढवे

हिन्दी विभागाध्यक्षा,
संत तुकाराम महाविद्यालय, परभणी.

प्राक्कथन :

सा

हित्य की विभिन्न विधाओं में नाटक का अपना विशेष स्थान है। नाटक आत्माभिव्यंजना का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। आज नाटक और रंगमंच जीवन से समान रूप से जुड़ा है और वह वर्तमान युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं को प्रखरता से व्यक्त करता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य यात्रा के दौरान लिखे अपने विभिन्न नाटकों के माध्यम से हिन्दी नाट्य-परंपरा को गौरवान्वित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. शेष के मन में अनेक प्रश्न अनेक जिज्ञासाएँ थी, जिन्हें वे नाटक के माध्यम से पाठक और दर्शक के सामने रखते थे। उन्होंने अपने नाटकों में निम्न मध्यम वर्ग की विभिन्न यातनाएँ, स्त्री-पुरुष संबंध, जातिवाद, समाज-कानून और मानवीय करूणा का द्वन्द्व, सुविधाभोगी संस्कृति, आधुनिक प्रेम सम्बन्धों की संकीर्णता, पारिवारिक असंगतियाँ, आवास की समस्या, निर्धन गरीब एवं अनपढ़ जनता का शोषण आदि अनेक प्रसंगों को अपने नाटकों में व्यक्त किया है।

उद्देश :

हिन्दी नाटकों में विविध सामाजिक समस्या व्यक्त हुई है। उन्हीं का अध्ययन करना। प्रस्तुत आलेख में मूर्तिकार नाटक में व्यक्त एक आदर्शवादी कलाकार की साधना, उसका संघर्ष और उसके परिवार की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत करना साथ ही साथ दूसरा नाटक 'फन्दी' जिसमें भी आर्थिक समस्या के कारण अपनेही हाथ से पिता का गला घोटना यह समस्या प्रस्तुत करना है।

व्याप्ती और मर्यादा :

प्रस्तुत आलेख में कुल दो नाटक का अध्ययन किया गया है। डॉ. शंकर शेष ने विविध समयों को अपने नाटक के द्वारा व्यक्त किया है। यहाँ दो नाटकों में व्यक्त सामाजिक आर्थिक, समस्या को उजागर किया गया है। उन दो नाटकों में

पहला नाटक 'मूर्तिकार' है और दूसरा 'फन्दी' जो प्रसिद्ध नाटक है।

सृष्टि अपने आप में सबसे खूबसूरत और समर्थ रंगमंच है और हम इस महाकाव्यात्मक सृष्टि नाटक की चलती-फिरती पात्र सृष्टि। काल-गति के अनुरूप साहित्य की विभिन्न विधाएँ मनुष्य की अना:चेतना को व्याख्यायित-विश्लेषित करती सुख-दुखात्मक क्षणों को युगानुरूप भंगिमाओं में तराशती रही हैं। फिर भी मनुष्य वजूद में बहुत कुछ ऐसा है जो अनेक विधाओं के रहते हुए भी उनमें नहीं आती। उसके लिए विशिष्ट विधा का निर्माण स्वयंमेव चक्रधारी समय ही करता है, जो मनुष्य के अन्दर के कीर्तन और कंकाल नर्तन को बाँध सके। आधुनिक काल में आकर काल की तक्षक स्थितियाँ तीव्रता से बदलती रहीं और मनुष्य के अन्दर अज्ञान-आरती से छल करती वह उसे संघर्ष और जीजिविषा के मंत्र थमाती रही। यह काल का अनिय नहीं जीवंतता थी जिसने स्वयं को पहचानने के लिए सृष्टि को ही चलते-फिरते साक्षात् मंच में परिवर्तित कर दिया।

हिन्दी नाटक ने मनुष्य के भीतरी द्वन्द्व को खासतौर से तराशा, उसे फैलाने से रोका, उसे बाँधा, काल-धार पर चढ़ाया, मथा, निछोड़ा, जोड़ा, रस्सी सा बंधा और संघर्ष जीजिविषा की अधिकारिक कथा का नायक-खलनायक बना दिया।

हिन्दी साहित्य में 'नाटक' महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे समाज, संस्कृति एवं राजनीति ने नयी करवट ली और एक नये प्रकार की आर्थिक परिस्थिति हमारे राष्ट्रीय जीवन में स्फुरित हुई। राष्ट्रीय जीवन में उभरने वाली इन नयी गतिविधियों, घटनाओं, परिवर्तनों तथा अनेक प्रकार के तनावों को पृष्ठभूमि में रखकर इस युग के नाटककारों ने मनवीय सम्बन्धों और मूल्यों के विघटन को अपने नाटकों से सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। हिन्दी नाटक को यह व्यापक परिदृश्य प्रदान करने में श्रेष्ठ युवा नाटककारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी नाटककारों में डॉ. शंकर शेषजी का नाम उल्लेखनीय है। उन्हींके दो नाटकों का अध्ययन किया है।

उनका पहला नाटक 'मूर्तिकार' प्रसिद्ध नाटक है। जिसमें एक आदर्शवादी कलाकार की साधना, उसका संघर्ष और उसके परिवार की दयानीय स्थिति को रूपायित किया है।

'मूर्तिकार' नाटक डॉ.शेष की प्रथम नाट्य - रचना है। नाटक का नायक शेखर है और नायिका ललिता है। शेखर एवं ललिता की मुख्य कथा के साथ ही नीलू और सतीश की प्रासंगिक कथा भी चलती है। शेखर एक प्रतिभासंपन्न एवं आदर्शवादी मूर्तिकार होने के कारण, अपने जीवन में किसी भी हालत में समझौता नहीं करने के कारण गरीब है। उसकी पत्नी ललिता को ऐसे व्यवहार शून्य पति के साथ दो वक्त की रोटी की फिक्र में ही गृहस्थी का भार झेलना पड़ता है। वह चाहती है कि उसका पति व्यवहार एवं आदर्श के बीच का सरल मध्य-मार्ग अपना ले, जिससे कि, "अपने कलाकार का अभिमान कायम रखकर उससे आमदनी का इंतजाम करो कि..... यह घर चल सके।" और इससे बेइज्जती की अपमानजनक जिंदगी से बचा जा सके। लेकिन शेखर उसे समझाता है और किसी भी हालत पर समझौता नहीं करना चाहता, क्योंकि वह मानता है कि, "समझौते से सुविधाएँ मिल सकती हैं, उँचाइयाँ नहीं। यहाँ पर सचाई तो यह है कि शेखर कला को ही जीवन की अवश्यकता मानता है और उसके इन विचारों को प्रोत्साहित करता है उसका मित्र अनादि। अनादि भी गरीब होनेके कारण जीवन में कुछ कर गुजरने की अपनी साहित्यिक प्रतिभा को पूर्ण विकासपथ पर नहीं ले जा सका है। वह इधर-उधर कुछ नौकरी करके अपना और अपनी बीमार माँ का पेट-गुजारा करता है। नौकरी छूट जाने के कारण बीमार माँ का किसी भी प्रकार से निर्वाह न कर पाने के कारण उसकी माँ मर जाती है। जिस हालत में उसकी माँ की मौत होती है, उसे जानकर अनादि के मन में करुणा, क्रोध, प्रतिशोध की भावना जागृत होती है वह कहता है, "मेरी माँ मर गई है.... हप्ते भर पहले मर गई है। शायद बहुत तकलीफ में मरी है, मेरी माँ शेखरा घर मेरी माँ जिस तरह मरी है, उस तरह और लोगों की माँ नहीं मरा करती शेखर। ... शायद मेरी माँ की लाश दो दिन तर उस झोपड़ी में सड़ती रही। उसकी दूर्गंधी ने शायद लोगों को उसकी मौत की खबर दी होगी। अनादि विद्रोह करता है और कला के मोह के स्थान पर अर्थ के मोह को महत्त्व देता है। इधर शेखर की बहन नीलू एक व्यापारी सतीश से प्यार करने लगती है। सतीश हर चीज को व्यापार की ही दृष्टि से देखता है। गरीब नीलू के शरीर को पाने के लिए अमीर सतीश प्यार का झूठा नाटक खेलकर नीलू को

धोखा देता है। जिससे शेखर के परिवार में आर्थिक संकट के साथ-साथ एक नया संकट भी खड़ा होता है।

आदर्शों को त्यागकर अर्थ को महत्त्व देनेवाला अनादि अब शांतनुकुमार के नाम से 'व्यभिचार', 'वासना' और 'जलती जवानी' जैसे अश्लील उपन्यास लिखकर खूब पैसा कमाता है। इसके विपरित आदर्शों से चिपका शेखर सभी तरह से अपनी कला में निराशा प्राप्त करता है। इन्ही दिनों वह अनादि की माँ की मौत से प्रभावित होकर एक चित्र बनाता है। 'ममता की मौत'। इस चित्र को शेखर की बहन नीलू चुप-चाप लंडन की एक आन्तराष्ट्रीय प्रदर्शनी में भेजती हैं और इस चित्र को प्रथम पुरस्कार के रूप में पौंड हजार पौंड की धनराशि प्राप्त होती है।

इधर नीलू और ललिता के सामने नई समस्या मे स्वार्थी सतीश नीलू को साथ देने की बजाय रुपये देकर छुटकारा पा लेता है।

ललिता की समस्या अलग है, उसका मकान मालिक नौ महिने के किराये के बदलेमें ललिता को पाना चाहता है। मकान मालिक नौ महिने के किराये को वक्त पर मसीहा बनकर अनादि बचा लेता है और वह नीलू को भी अपना लेता है। इस प्रकार नीलू को सच्चा जीवनसाथी मिलता है, शेखर को अपनी मंजिल मिली है, और ललिता को आत्मशांति। इसी के साथ नाटक पूरा होता है।

डॉ. शेष का दूसरा नाटक 'फन्दी' तीन अंक का है। प्रथम अंक में नाटककार ने 'फन्दी' की पूर्व-घटित कथा को रखा है। द्वितिय अंक में पारिवारिक सामाजिक मूल्यों और नियमों के आधार पर फन्दी को हत्यारा ठराने प्रयत्न चित्रित किया गया है। तीसरे अंक में नाटक की मूल समस्या को मुल - प्रश्नों को उठाया गया है।

नाटक का नायक 'फन्दी' नेशनल ट्रांसपोर्ट में पीछले पाँच साल से इमानदार ड्राइवर की नौकरी करता था। एक दिन उसे गाँजे की स्मगलिंग करने को कहा जाता है, तो वह साफ इन्कार कर देता है और उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। एक तो गरीबी, उस पर बेकारी और पिता की असाध्य कैंसर की बीमारी। फन्दी की हालत अत्यंत खराब हो जाती है। एक तरफ भूखे लजपते बच्चे, दूसरी तरफ कैंसर के दर्द के कारण मर्मन्तक पीड़ा से कराहना, दवाई इंजेक्शन के लिए तरसता पिता। फन्दी स्वभाव से दयालु है। वह पिता का ईलाज करवाने के लिए घर के बर्तन, बीवी के जेवर आदि सब कुछ बेचता है। पिता को इलाज के लिए बंबई जैसे बड़े शहर के

डॉक्टर के पास ले जाता है। इसके लिए वह खान से 500 रुपये का कर्ज लेता है। हर संभव कोशिश के बावजूद भी निराश असफल फन्दी वापस लौट आता है। लौटने पर भी वह हिम्मत नहीं हारता और पिता के दर्द के इलाज का हर संभव प्रयत्न करता है। उसके पिता का दर्द इतना बढ़ जाता है कि बिना बेहोशी के इंजेक्शन के उसे नींद ही नहीं आती। हर इंजेक्शन का पाँच रूपया लगता है। गरीबी, बेकारी और महँगाई की हालत में वह कितने दिन पिता का इलाज करा पाता? एक दिन शाम को फन्दी घर लौट रहा था कि खान रस्ते में ही उसकी चती पर डण्डा तानकर बेइज्जती के साथ अपना पैसे वापस माँगता है। घर में पैर रखते ही पिता पूछते हैं, "बेटा आज इंजेक्शन लगेगा?" फन्दी के ना कहने पर पिता उसके पैरो में लिपटकर रोने लगता है और कहता है बेटा इंजेक्शन दो या मौत, फन्दी इंजेक्शन नहीं दे सकता था लेकिन मौत तो दे ही सकता था। अनजाने ही फन्दी के हाथ पिता के गले को कसने लगते हैं। और गला घोटकर वह अपने पिता को मार देता है। मनचाही मुराद मिलती देख पिता भी हँसते-हँसते मरता है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या फन्दी वास्तव में हत्यारा है? क्या कानून का जन्म मनुष्य को अन्याय, अत्याचार और तकलीफ से छुटकारा देने के लिए नहीं हुआ? अगर कानून पत्थर की तरह स्थिर और जड़ हो जाय तो क्या समाज की बदलती परिस्थितियों में वह न्याय दे सकेगा? नाटककार केवल प्रश्न उठाता है, अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। नाटक के अंत में फन्दी का यह प्रश्न कि.. आपका क्या ख्याल है, मैं बच जाऊँगा? पाठक के मन को चीरकर उसे अन्तर्मुख बनाता है।

निष्कर्षतः कहा जाता है, कि डॉ. शेष के प्रथम नाटक 'मूर्तिकार' में समाज में दिखाई देनेवाले एक आदर्शवादी कलाकार की साधना, उसका संघर्ष और परिवारिक स्थिति को चित्रित किया गया है। समाज में ऐसे कितने परिवार हैं जो ऐसीही दयनीय स्थिति में गुजारा करते हैं। दुसरा नाटक फन्दी में लेखकने जीवन-मूल्यों की वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों के साथ असंगतता और नवीन मानदण्डों की स्थापना की आवश्यकता की ओर पाठक दर्शक का ध्यान आकर्षित करना है।

संदर्भग्रंथ सूची :

- १) डॉ. शंकर शेष, रचनावली, भाग २ संपा, डॉ. विनय, पृ. ८५.
- २) वही, पृ. ६२
- ३) वही, पृ. १३१
- ४) डॉ. शंकर शेष, फन्दी
- ५) डॉ. कपिला मं. पटेल, डॉ. शंकर शेष के प्रमुख नाटकों में व्यक्त सामाजिक चेतना.